काश 'कांग्रेस को मर जाना चाहिए' याद रखने वाले पढ़ भी लेते कि मैंने यह क्यों कहा था, तो वे आज हैरान न होते

योगेंद्र यादव

इतिहास के इस मुकाम पर हम अपने आपस के झगड़ों में उलझे नहीं रह सकते. पॉल सैम्युल्सन की तर्ज पर मैं भी सबसे पूछना चाहता हूं, ' जब स्थिति बदलती है तो मैं अपना आकलन बदल लेता हूं लेकिन आप क्या करते हैं, जनाब?'

क्या आपने ये नहीं कहा था कि 'कांग्रेस को मर जाना चाहिए'? तो फिर, आप अब कांग्रेस के नेताओं के साथ कैसे कदम मिला सकते हैं? आप कांग्रेस की भारत जोड़ो यात्रा में कैसे शामिल हो सकते हैं?

बीते तीन हफ्तों में मुझे इन सवालों का बारंबार सामना करना पड़ा है. आलोचकों ने चुटकी ली है. मीडियाकर्मी मानकर चल रहे हैं कि मैं इस कठिन सवाल से किसी ना किसी तरह कन्नी काटकर बच निकलूंगा. बेशक यह एक ईमानदार सवाल है और इस नाते इस सवाल का एक सीधा सा जवाब होना चाहिए. लेकिन, यह कोई धोबीपाट जैसा शर्तिया चित्त करने वाला दांव नहीं है, इसमें 'शह और मात' जैसी कोई बात नहीं है. न मैने पलटी मारी है, न पाला बदला है, न मेरा हृदय-परिवर्तन हुआ है.

वजह बड़ी सीधी सी है: ऐसी टीका-टिप्पणी करने वाले ज्यादातर लोग मैंने जो कुछ उस वक्त लिखा-बोला था, उसे पूरा पढ़ने की फिक्र नहीं करते और ना ही मैं अभी के वक्त में जो कुछ कह रहा हूं, उसे ही ठीक से सुनते-गुनते हैं. ऐसे लोगों को बस इतना भर याद रह गया है कि इस आदमी ने तो यह तक कह दिया था कि 'कांग्रेस को मर जाना चाहिए' और दिखाई देने के नाम पर इन लोगों को बस इतना भर दिख दे रहा है कि यह आदमी तो भारत जोड़ो यात्रा में राहुल गांधी के साथ कदम-ताल कर रहा है. जैसा गणित में लिखते हैं न सवाल के आखिर में कि 'इस तरह यह प्रमेय सिद्ध हुआ' है, वैसे ही इन लोगों ने मान लिया है कि बात तो खुद ही साबित है, उसके बारे में और कुछ क्या और क्यों कहना.

'कांग्रेस को मर जाना चाहिए' का मतलब तो समझिए !

पहला जरूरी कदम तो यही होगा कि इन पांच शब्दों (कांग्रेस को मर जाना चाहिए) से आप आगे बढ़ें और 19 मई 2019 के मेरे 41 शब्दों के ट्वीट को उसके मूल रुप में पढ़ें. उस ट्वीट में जो कुछ कहा गया था उसका हिन्दी अनुवाद कुछ यों होगा: 'कांग्रेस को मर जाना चाहिए. अगर वह इस चुनाव में भारत के स्वधर्म को बचाने के वास्ते बीजेपी को नहीं रोक सकती तो फिर इस पार्टी की भारतीय इतिहास में कोई सकारात्मक भूमिका नहीं बची है. आज की तारीख में यह किसी विकल्प को गढ़ने में अकेली सबसे बड़ी बाधा है.'

दो दिन बाद मैंने ट्वीट का विस्तार 1,123 शब्दों के एक आलेख में किया. यह आलेख इंडियन एक्सप्रेस में छपा जिसमें मौत के रुपक को इन शब्दों में बयान किया गया था: 'वैकल्पिक राजनीति तब तक खड़ी नहीं हो सकती… जबतक कि हम यह मान कर काम न करें कि कांग्रेस तो है ही नहीं. मौत के रुपक को इसी अर्थ में समझना चाहिए.' मैंने बताया था कि कांग्रेस के अंध-विरोध की आदतवश मैं ये बातें नहीं लिख रहा हूं. लेख में यह पंक्ति भी आई थी, गैरकांग्रेसवाद एक अल्पकालिक राजनीतिक रणनीति थी और इसे विचारधारा के रूप में परिवर्तित नहीं करना चाहिए.' ऐसा भी नहीं था कि इसमें कांग्रेस नेतृत्व पर कोई निजी हमला बोला गया था. मैंने लिखा था, 'जिन नेताओं से मैं मिला हूं उनमें राहुल गांधी सबसे ज्यादा ईमानदार हैं और लोग जितना समझते हैं, वे उससे कहीं ज्यादा बुद्धिमान हैं.' लेकिन, ज्यादातर टिप्पणीकारों ने इन पंक्तियों को पढ़ना जरूरी नहीं समझा.

मेरी आलोचना का मुख्य तर्क बड़ा सीधा सा था, 'नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली बीजेपी का उदय लोकतंत्र और विविधता के बुनियादी संवैधानिक मूल्यों के लिए खतरा है… प्रमुख राष्ट्रीय विपक्षी दल होने के नाते पहला दायित्व कांग्रेस का बनता है कि वह हमारे गणतंत्र को इस हमले से बचाएं …क्या कांग्रेस ने बीते पांच सालों में यह जिम्मेदारी निभाई है? क्या यह यकीन किया जा सकता है कि कांग्रेस निकट भविष्य में ऐसी जिम्मेदारी निभाएगी? मेरा साफ जवाब है, नहीं. कांग्रेस सिर्फ जिम्मेदारी से भाग ही नहीं रही बल्कि जो लोग गणतंत्र की हिफाजत में कुछ करना चाहते हैं उनके रास्ते की भी बाधा है.'

उस वक्त कांग्रेस के खिलाफ मेरी प्रतिक्रिया इस बुनियादी चिंता से जुड़ी थी कि भारत के स्वधर्म को बचाना है तो कांग्रेस को आगे आना चाहिए, उसे बीजेपी के दुर्दम्य रथ को आगे बढ़कर रोक देना चाहिए. ठीक उसी चिंता के चलते मैं आज भारत जोड़ो यात्रा को अपना समर्थन दे रहा हूं. यह समर्थन बिनाशर्त नहीं हैं. भारत जोड़ो यात्रा को समर्थन देने के लिए 200 एक्टिविस्टस् और बुद्धिजीवियों के साथ मैंने जिस बयान पर हस्ताक्षर किए हैं उसमें भी यह दर्ज है कि संवैधानिक मान-मूल्यों के सामने अप्रत्याशित खतरा आ खड़ा हुआ है और एक शांतिपूर्ण, लोकतांत्रिक प्रतिरोध को खड़ा करने की जरूरत आन पड़ी है. बयान में साफ शब्दों में कहा गया है: 'भारत जोड़ो यात्रा जैसी पहल को एकवक्ती समर्थन देने का मतलब यह नहीं कि हम लोगों ने अपने को किसी राजनीतिक दल या नेता के साथ जोड़ लिया है. यह आपस के मत-मतान्तर को एक किनारे करते हुए, अपने संवैधानिक गणतंत्र को बचाने के लिए की जा रही किसी भी सार्थक और कारगर पहल को समर्थन देने के संकल्प की अभिव्यक्ति है.'

तब और अब के बीच क्या बदला है ?

जाहिर है कि मेरा मूल तर्क नहीं बदला है. तब की तरह अब भी मेरी टेक एक ऐसी राजनीति को खोजने की है जो बीजेपी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ(आरएसएस) के हमलों से हमारे संवैधानिक मान-मूल्यों की रक्षा कर सके. तब की तरह अब भी मैं अपनी इस तलाश के पहले पड़ाव के रूप में कांग्रेस को देखता हूं जिसकी अखिल भारतीय स्तर पर मौजूदगी है और सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी है.

लेकिन जाहिर है इस बीच कुछ न कुछ बदला भी है. कांग्रेस को मैंने अपनी जांच-परीक्षा और पूर्वानुमान के आधार पर खारिज किया था. मैंने तब ये माना था कि कांग्रेस कारगर साबित नहीं हो रही कि दरअसल तो वह अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारी को निभा पाने में एक बाधा साबित हो रही है. तो फिर, उस समय से आज की तारीख के बीच में क्या बदला है? क्या कांग्रेस बदली है? या मैं ही बदल गया हूं?

क्या 2019 के लोकसभा चुनावों से जुड़ी कांग्रेस की भूमिका की अपनी आलोचना में मैंने कोई बदलाव किया है? जी नहीं. हाल के इतिहास के मेरे अपने पाठ में कोई खास बदलाव नहीं आया है. साल 2019 के चुनाव को जिस तरह हाथ से गंवा दिया गया उसे लेकर अपनी राय, अपनी निराशा और अपने क्षोभ को बदलने का मेरे पास कोई कारण नहीं. मैं 2019 के लिए खुद के साथ-साथ बीजेपी-विरोधी खेमे में जो कोई भी है, सबको दोषी मानता हूं. लेकिन प्रमुख राष्ट्रीय विपक्षी दल होने के नाते कांग्रेस को अपना दोष सबसे ज्यादा मानना चाहिए. यह भी दर्ज करता चलूं यहां मुझे भ्रष्टाचार-विरोधी आंदोलन में शामिल होने और इस आंदोलन को पार्टी के रूप में बदलने का फैसला लेने का पछतावा नहीं है. (मैं लिख चुका हूं कि एक चालबाज टोली, पार्टी को अपने साथ ले उड़ी और हम उसे ऐसा करने से नहीं रोक सके, मुझे इस बात का अफसोस है).

तो क्या कांग्रेस पिछले तीन सालों में बदल गई है? क्या मैं कांग्रेस की हमारे गणराज्य की बुनियाद पर हो रहे हमले के खिलाफ उठ खड़े होने की क्षमता पर यकीन करने लगा हूं?

इस सवाल का एक ईमानदार जवाब तो यही होगा कि 'मैं नहीं जानता…' शेष बहुत सारे लोगों की तरह मैं भी इस सवाल का जवाब ढूंढ़ने में लगा हूं. और, यह जवाब सिर्फ कांग्रेस के नेताओं और इस यात्रा के बाकी साथियों के बीच नहीं ढूंढ़ रहा हूं बल्कि आम लोगों के बीच भी इस सवाल का जवाब ढूंढ़ रहा हूं. मैंने गौर किया है कि कांग्रेस के नेता, खासकर राहुल गांधी ने सेकुलरवाद, सामाजिक न्याय और आर्थिक समानता के मुद्दे पर साफ शब्दों में अपनी बात रखी है. मैं यह भी देख रहा हूं कि कांग्रेस ने अन्य राजनीतिक दलों, आंदोलनों और संगठनों को यात्रा में भागीदारी का निमंत्रण दिया है. मैं जानता हूं कि कांग्रेस का नेतृत्व बीजेपी को टक्कर देना चाहता है— सिर्फ चुनावी मैदान में ही नहीं बल्कि राजनीतिक और विचारधाराई रूप से भी उससे भिड़ जाना चाहता है. लेकिन क्या कांग्रेस ऐसा कर पाएगी या यों कहें कि क्या वो ऐसा कर सकती है? हमारे समय का यक्षप्रश्न भी यही है. जो लोग कांग्रेस में हैं, यह सवाल उनके लिए है. यह सवाल भारत के लिए भी है. इस सवाल का अभी से कोई पुख्ता जवाब नहीं दिया जा सकता.

बीते तीन सालों में जो सबसे बड़ा बदलाव हुआ है, उसका नाम भारत है. साल 2019 में हम लोग निश्चित ही एक बुरे मुकाम पर आ पहुंचे थे लेकिन इसके बाद के समय में जिस गड्ढे में जा गिरे उसकी तुलना में 2019 का वह मुकाम बेहतर ही कहा जाएगा. आज हम एक खाई की कगार पर खड़े हैं— हमारा संविधान, आजादी की लड़ाई की हमारी विरासत और हमारी सभ्यतागत विरासत सब-कुछ दांव पर लगी है. आज सवाल सिर्फ सरकार या लोकतंत्र का नहीं बल्कि भारत के अस्तित्व का है…यह अस्तित्व ही

हमले की जद में है. जब घर में आग लगी हो तब दो ही पक्ष होते हैं: वह जो पानी की बाल्टी लेकर खड़े हैं और वह जो पेट्रोल की बोतल लेकर खड़े हैं. इतिहास के इस मुकाम पर हम अपने पुराने द्वेष और झगड़ों-टंटों में नहीं उलझे रह सकते. सैम्युल्सन (ना कि कीन्स) की तर्ज पर पर मैं भी हर किसी से पूछना चाहता हूं: 'जब स्थिति बदलती है तो मैं अपना आकलन बदल देता हूं. आप क्या करते हैं, जनाब ?'

मृत्यु या पुनर्जन्म?

लेकिन दिख रहे लक्षण के हिसाब से आगे के वक्तों के बारे में क्या कुछ कहा जा सकता है? मैंने तो लक्षण के तौर पर इस बात की पहचान की थी कि कांग्रेस किसी विकल्प के गढ़ने में प्रमुख बाधा है. इस सोच में एक पूर्व मान्यता थी कि एक गैर-कांग्रेसी, बीजेपी-विरोधी राजनीति विकल्प के रूप में उभरेगी. पिछले तीन सालों में यह उम्मीद फलीभूत नहीं हो सकी है. सच यह है कि हम सभी लोग जो वैकल्पिक राजनीति पर यकीन करते हैं, ऐसा कोई राजनीतिक साधन नहीं तैयार कर सके हैं जो नैतिक भी हो और कारगर भी. कुछ क्षेत्रीय दलों ने बीजेपी को टक्कर देने के दमदार तरीके अपनाए हैं लेकिन इन दलों ने राष्ट्रीय स्तर पर कोई वैकल्पिक मंच तैयार नहीं किया. जन-आंदोलनों के पास ऊर्जा और साहस तो भरपूर है लेकिन बीजेपी को चुनावी मैदान में टक्कर दे सकने लायक विस्तार उनके पास नहीं है. अगले दो सालों के लिए कांग्रेस और मुख्यधारा के अन्य दल ही हमारे गणतंत्र की रक्षा के मुख्य साधन हैं. यहां मैं पूरी ईमानदारी से यह दर्ज करता चलूं कि इंडियन एक्सप्रेस में छपे मेरे लेख की आलोचना में ठीक यही बात प्रोफेसर सुहास पळशीकर ने लिखी थी. हमेशा की तरह उनकी लिखी आलोचना एक बार फिर से भविष्यदर्शी साबित हुई.

आखिर में एक बात और. जिन लोगों को मेरा लिखा याद रह गया है कि 'कांग्रेस को मर जाना चाहिए' वे इस बात को भूल जाते हैं कि मैंने अपने लेख का अंत किन शब्दों में किया था. मैंने कल्पना की थी कि कांग्रेस के भीतर और बाहर की ऊर्जा आपस में मिलकर एक नया विकल्प गढ़ सकती है.

'मृत्यु का यह स्याह रूपक नए जन्म के बारे में सोचने का एक निमंत्रण है? या कि एक पुनर्जन्म का?' ' क्या भारत जोड़ो यात्रा को हम पुनर्जन्म के उसी संभावित क्षण के रूप में देख और सोच सकते हैं?